कथा साहित्य

यह संकलन

प्रस्तुत संकलन में हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ कहानीकारों की पाँच चुनी हुई कहानियाँ संकलित हैं। विविध सामाजिक सन्दर्भों को आधार बनाकर विविध भाषा-शैलियों में गढ़ी हुई इन कहानियों में से हर एक की अपनी अलग गुणवत्ता है। इन कहानियों के माध्यम से छात्र-छात्राओं को हिन्दी कहानी के पुराने और नये रूपों का समग्र परिचय मिल सकेगा। दोनों प्रकार की कहानियों का संख्यात्मक अनुपात बराबर-बराबर है। निश्चय ही आदर्श और यथार्थ का यह सन्तुलन अध्येताओं को हिन्दी साहित्य और जीवन की एक स्वस्थ समझदारी दे सकेगा। इन कहानियों के द्वारा छात्र-छात्राओं को भारतीय ग्राम और नगर-समाज की सही झलक तो दिखायी देगी ही, उनमें अपनी संस्कृति और अपने राष्ट्र के प्रति एक ऐसा दायित्व-बोध उपज सकेगा जो उन्हें विचारशील नागरिक बनने की सजग प्रेरणा प्रदान करेगा।

प्रसिद्ध कहानीकार मुंशी प्रेमचन्द ने 'बलिदान' कहानी के माध्यम से तत्कालीन समाज में व्याप्त जमींदारी प्रथा के अवगुणों पर प्रकाश डाला है। प्रस्तुत कहानी में काश्तकार गिरधारी प्रमुख पात्र है। जयशंकर प्रसाद जी ने 'आकाशदीप' कहानी के माध्यम से प्रेम और कर्त्तव्य निष्ठा का अनुपम आदर्श प्रस्तुत किया है। भगवतीचरण वर्मा द्वारा लिखित कहानी 'प्रायश्चित' में कबरी बिल्ली के माध्यम से धार्मिक ढकोसले एवं अन्धविश्वास की खिल्ली उड़ायी गयी है। यशपाल द्वारा लिखित कहानी 'समय' में एक नौकरीपेशा मध्यम परिवार की कथा वर्णित है। इस कहानी के माध्यम से पीढ़ियों के चिन्तन का सूक्ष्म अन्तर दिखाया गया है। जैनेन्द्र जी ने 'ध्रुवयात्रा' कहानी में दो प्रेमियों के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व की भयानक परिणति को दर्शाया है।

हमें विश्वास है कि यह संकलन अध्येताओं को हिन्दी कहानी का सही परिचय दे सकेगा।

भूमिका

कहानी गद्य-साहित्य की सबसे लोकप्रिय विधा मानी जाती है। आरम्भ में मनोरंजन और आत्म-परितोष के लिए कहानी कही-सुनी जाती थी। बाद में व्यक्ति और समाज के महत्त्वपूर्ण अनुभवों को प्रकट करने के लिए तथा नीति और उपदेश, सामाजिक सुधार, बाह्य एवं आन्तरिक अनुभूतियों आदि की अभिव्यक्ति के लिए भी कहानी को माध्यम बनाया गया। कहानी अपनी वर्णनात्मक विशेषता के कारण अत्यन्त प्रभावशाली विधा रही है।

निबन्ध की तुलना में कहानी गद्य की बहुत सरल विधा है। कदाचित इसीलिए उसका चलन भी निबन्ध के पहले से है। कहानी कहना और सुनना सभी अवस्था के लोगों को प्रिय है। पर कहानी केवल मनोरञ्जन का ही साधन नहीं है, वह गहन विचारों और सन्देशों को भी वहन करती है। विश्व-साहित्य में ऐसी भी कहानियाँ लिखी गयी हैं जो देश और काल की सीमा का अतिक्रमण करती हुई मानव-मन पर अपना स्थायी प्रभाव छोड़ गयी हैं।

➥ परिभाषा

कहानी के लक्षण और परिभाषा के सम्बन्ध में विचारकों के अलग-अलग मत हैं। **प्रेमचन्द** के अनुसार, ''कहानी ऐसा उद्यान नहीं जिसमें भाँति-भाँति के फूल और बेलबूटे सजे हुए हों, बल्कि वह एक गमला है जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है।''

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने कहानी की परिभाषा इस प्रकार दी है—''सादे ढंग से केवल कुछ अत्यन्त व्यञ्जक घटनाएँ और थोड़ी बातचीत सामने लाकर क्षिप्र गति से किसी एक गम्भीर संवेदना या मनोभाव में पर्यवसित होनेवाली गद्य विधा कहानी है।''

एडगर एलन पो का अभिमत है कि ''कहानी एक निश्चित प्रकार का वर्णनात्मक गद्य है जिसके पढ़ने में आधे से लेकर एक घण्टे का समय लगता है।''

इन तथा अन्य परिभाषाओं के आधार पर कहानी के लक्षण निम्नांकित रूप में निर्धारित किये जा सकते हैं—

1. कहानी में एक ही विषय अथवा संवेदन का प्रस्तुतीकरण होता है।
2. कहानी का एक निश्चित उद्देश्य होता है तथा उसमें संवेदनात्मक अन्विति होती है।
3. मानवीय संवेदनाओं, अनुभूतियों एवं तथ्यों की रोचक व्यञ्जना होती है।
4. वस्तु तत्त्व (चरित्र, घटनाएँ, कथानक) का आकार लघु होता है।
5. मनोरञ्जन के साथ-साथ जीवन की शाश्वत समस्याओं का प्रकाशन भी कहानी का लक्ष्य है।

कहानी के तत्त्व

कहानी में 6 तत्त्वों की प्रधानता होती है—

(1) कथानक
(2) पात्र एवं चरित्र-चित्रण
(3) कथोपकथन (संवाद)
(4) वातावरण (देश-काल)
(5) भाषा-शैली
(6) उद्देश्य

➡ कथानक

कहानी में कथानक सबसे प्रधान तत्त्व है। कहानी में वस्तुविन्यास अथवा कथानक का निबन्धन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है। घटना-प्रधान कहानियों में तो कथानक का ही विशेष महत्त्व है, परन्तु अन्य प्रकार की कहानियों में भी इसका महत्त्व कम नहीं है। कथानक के नियोजन पर ही कहानी की सफलता निर्भर करती है। वस्तुतः कथानक के बिना कहानी का कोई अस्तित्व ही नहीं है। यद्यपि अधुनातन कहानी में इस बात की भी चेष्टा की जाती रही है कि कथानक अनिवार्य न रहे, पर ऐसा कोई प्रयोग बहुत सफल नहीं हो सका है।

आज कहानियों में कथानक का निषेध तो नहीं हो सका, पर उसका ह्रास अवश्य लक्षित होता है और उसके स्थान पर मनःस्थितियों पर पड़नेवाले प्रभाव को महत्त्व दिया जाने लगा है। इस तरह कथानक का आधार क्षीण होता जा रहा है, यद्यपि कथानक के सूत्र किसी-न-किसी रूप में विद्यमान रहते ही हैं। जैनेन्द्रकुमार की 'एक रात', इलाचन्द्र जोशी की 'रोगी', उषा प्रियम्वदा की 'मछलियाँ', मन्नू भण्डारी की 'तीसरा आदमी' आदि कहानियाँ ऐसी ही हैं। कहानी का कथानक प्रभावोत्पादक, विचारोत्तेजक एवं जीवन के यथार्थ से सम्बद्ध होना चाहिए। कहानी का स्वरूप निश्चित करते समय कहानीकार को युग-बोध और भाव-बोध दोनों दृष्टियों से विचार करना चाहिए। कहानी में आरम्भ, उत्कर्ष और अन्त—तीन कथा-स्थितियाँ होती हैं और तीनों का ही अत्यधिक महत्त्व है। आरम्भ में परिचयात्मक स्वरूप धारण करते हुए कहानी परिस्थितिजन्य प्रभावों को एकत्र करती हुई अत्यन्त तीव्रता से उत्कर्ष बिन्दु पर पहुँचती है। इसीलिए कहा जाता है कि कहानी उस छोटी दौड़ की प्रतियोगिता की भाँति है, जिसमें आरम्भ से लेकर अन्त तक दौड़ की तीव्रता में कहीं कमी नहीं आती। इस दृष्टि से वस्तु-विन्यास के आरम्भ, मध्य और समापन—तीनों में गति की तीव्रता का नैरन्तर्य बराबर बना रहना चाहिए।

यदा-कदा ऐसी कहानियाँ भी मिलती हैं, जिनमें दुहरे कथानक होते हैं। नयी कहानियों में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से मिलेगी। ऐसी कहानियों में प्रभावान्विति खण्डित नहीं होती, कहानी के मूल भाव के अनुसार ही कथावस्तु की संरचना की जाती है। कथावस्तु में क्रमबद्धता के साथ-साथ कुतूहल एवं चमत्कार का भी विशेष महत्त्व है। तिलस्मी, जासूसी आदि कहानियों में चमत्कारपूर्ण योजना ही प्रधान हुआ करती हैं। कथानक में द्वन्द्व और संघर्ष का स्थान भी महत्त्वपूर्ण है। कभी-कभी द्वन्द्व चित्रण ही कहानी का मुख्य ध्येय बन जाता है। यह द्वन्द्व भौतिक भी होता है और मानसिक भी। कभी व्यक्ति को अपने समानधर्मी व्यक्ति से, कभी परिस्थितियों से और कभी स्वयं अपने अन्तःकरण के मनोभावों से लड़ना पड़ता है। द्वन्द्व से कथानक में नाटकीयता उत्पन्न हो जाती है और कहानी रुचिकर हो जाती है।

कथानक में कल्पना संभाव्य और असंभाव्य दोनों रूपों में व्याप्त होती है। लेखक जिस विषय को कहानी का प्रतिपाद्य बनाता है, उसे प्रस्तुत करने के लिए वह ऐसे कारण, कार्य और परिणाम की योजना करता है जो कथ्य को प्रभावोत्पादक बनाकर यथार्थ धरातल पर प्रतिष्ठित कर सके। इसके लिए उसे पूरे कथानक को परिच्छेदों में विभाजित करना पड़ता है अथवा ऐसे मोड़ देने पड़ते हैं कि कथ्य प्रभावान्विति का कारण बन सके।

कथानक में आदि, मध्य और अन्त—तीन महत्त्वपूर्ण स्थल हैं। आदि से अन्त तक कहानी की एकोन्मुखता बनी रहती है। वस्तु के अनुरूप ही कहानी के कथानक की योजना करनी पड़ती है। आदि में वह पीठिका तैयार करनी पड़ती है जिस पर कहानी का अन्त प्रतिष्ठित होता है। कहानी का मध्य-बिन्दु वह स्थल है, जहाँ कहानी अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर पाठक की उत्सुकता को विशेष तीव्र एवं संवेदनशील बनाती है। कहानी को वास्तविक आकार मध्य में ही मिलता है। कभी-कभी कहानी में मध्य बिन्दु का पता नहीं लगता और कथानक की चरम सीमा अन्त में व्यक्त होती है। इस दृष्टि से समापन का स्थल अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यहीं पहुँचकर कहानी अपनी सम्पूर्ण संवेदनशीलता, प्रभावोत्पादकता एवं पूर्णता का परिचय देती है। प्रभाव की पूर्णता समापन का लक्ष्य है। सारी जिज्ञासा की वृद्धि और कुतूहल की समाप्ति यहीं आकर होती है। मूलभाव की प्रतीति इसी स्थल पर होती है। कहानी का अन्त लघु, सांकेतिक और स्पष्ट होना आवश्यक है। लेखक को यह ध्यान में रखना पड़ता है कि अन्त ऐसे स्थल पर हो, जहाँ कहानी का सम्पूर्ण अन्तरंग ऐसे बिन्दु पर पहुँचकर अनावृत हो जाय कि आगे कुछ कहने की आवश्यकता न रहे। कुछ कहानियाँ ऐसी भी लिखी गयी हैं जिनमें कथावस्तु, घटनाओं और कार्य-कारण आदि की स्थिति एकदम नगण्य है।

➡ पात्र एवं चरित्र-चित्रण

कहानी के मूल भाव के अनुसार ही पात्रों के व्यक्तित्व, चरित्र एवं प्रवृत्तियों का निर्धारण होता है। मानव का चरित्र जब बहुमुखी और जटिल नहीं हुआ था तब बाह्य घटनाओं का चमत्कारपूर्ण वर्णन कहानी के आकर्षण का केन्द्र था। साहित्य की सभी विधाओं

में घटनाओं और संघर्ष की ही प्रधानता थी। चरित्रों का विभाजन—धीरोदात्त, धीरललित, धीरोद्धत और धीरप्रशान्त रूप में करके उनकी सीमाएँ निर्धारित कर दी गयी थीं और उनके गुण-दोष तालिकाबद्ध थे। परन्तु 19वीं शती के आरम्भ में वैज्ञानिक प्रगति एवं मनोवैज्ञानिक उपलब्धियों ने साहित्य की निर्धारित मान्यताओं में युगान्तर उपस्थित किया। सामाजिक आचार-विचार एवं मान्यताओं में भी परिवर्तन हुआ और चरित्रों में अनेक जटिलताओं एवं रूपों की सृष्टि हुई। अब मानव-चरित्र कई स्तरों में विभाजित हो गया है। एक ही व्यक्ति के चरित्र में द्विव्यक्तित्व और बहुव्यक्तित्व का रूप दिखायी पड़ता है। भौतिकवादी और व्यावसायिक दृष्टि की प्रधानता होने से प्राचीन आदर्शवादी एवं नैतिक दृष्टि बहुत पीछे छूट गयी है। प्रत्येक मनुष्य अथवा मनुष्य द्वारा सम्पादित कोई विशिष्ट कार्य अथवा मनुष्य से सम्बद्ध कोई घटना ही इस मूलभाव के अन्तर्गत रहती है। घटना अथवा वातावरण को भी सजीव रूप देने के लिए, उसे प्राणमय बनाने के लिए मनुष्य को प्रतिष्ठित करना पड़ता है। निष्कर्ष यह है कि कहानी का मूलभाव चाहे जो भी हो, मानव-चरित्र की प्रतिष्ठा ही कहानी का प्रधान विषय है। कहीं मनुष्य मूलभाव से सीधे सम्बद्ध होता है और कहीं प्रकारान्तर से। कहानी में पात्र और कथावस्तु का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध होता है। दोनों मिलकर कहानी के केन्द्रीय भाव को व्यक्त करते हैं। कुछ पात्र सामान्य होते हैं और कुछ प्रतीकात्मक। सामान्य पात्रों के भी दो वर्ग होते हैं—कुछ वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं और कुछ व्यक्ति का। कहानी लघु प्रसारवाली होती है। इसलिए उसमें नायक के चरित्र को ही अधिक उभारकर प्रस्तुत किया जाता है। दूसरे पात्रों के चरित्र की प्रमुखता होने पर कहानी का मूल भाव आच्छन्न हो जायगा। कहानी में उपन्यास की भाँति चरित्रांकन में वैविध्य की गुंजाइश नहीं होती। इसमें चरित्र या जीवन के किसी एक पक्ष की झलक मिलती है। किसी एक विशेष परिस्थिति में रखकर नायक की किसी एक प्रवृत्ति का उद्‌घाटन करना ही कहानीकार का अभीष्ट हुआ करता है। चरित्रांकन की सफलता के लिए यह भी आवश्यक है कि चरित्र गतिशील हो और यथार्थ जीवन से सम्बद्ध हो। चरित्र-चित्रण यदि पुरानी रूढ़ियों एवं सिद्धान्तों के अनुसार किसी एक घिसी-पिटी परिपाटी से किया जायगा तो वह पत्थर की मूर्ति की तरह निर्जीव हो जायगा।

आज के बौद्धिक युग का पाठक चारित्रिक वैचित्र्य को देखना व समझना चाहता है। अन्तर्जगत् के भावात्मक संघर्ष में उसे एक विशेष प्रकार का रस मिलने लगा है। पहले की कहानियों में कुतूहल एवं जिज्ञासा जगाने और उसे तृप्त करने की प्रवृत्ति ही प्रधान थी, परन्तु आजकल का पाठक बौद्धिक दृष्टि से बहुत आगे बढ़ गया है। वह कहानी में चरित्र की सूक्ष्मता और चारित्रिक भंगिमाओं का वैविध्य देखने की आकांक्षा रखता है। इसीलिए आज की कहानियों में वैविध्य-विधायिनी मनोवृत्तियों के उद्‌घाटन की प्रवृत्ति अधिक दिखलायी पड़ती है। वेशभूषा, बाह्य क्रियाकलाप, शारीरिक द्वन्द्व आदि स्थूल बातें अब हमें तृप्त नहीं करतीं। आज के पाठक की इच्छा होती है कि वह विचित्र चरित्र के मनोलोक में प्रवेश कर उसके अन्तर्जगत् की झाँकी प्राप्त कर सके। तात्पर्य यह कि आज की सबसे उत्तम कहानी का आधार मनोवैज्ञानिक सत्य है। वातावरण एवं परिस्थितियों का अब कोई स्वतन्त्र महत्त्व नहीं रह गया है। वे पात्रों के सूक्ष्म मनोभावों के प्रस्तुतीकरण में योगदान करते हैं। चरित्र का युद्धस्थल, उसका सारा संघर्ष अब बाह्य से अधिक आन्तरिक हो गया है। आन्तरिक द्वन्द्वों के अनुरूप ही बाहरी घटनाएँ और क्रिया-व्यापार मुख्य रूप से प्रस्तुत किये जा रहे हैं। मनोवैज्ञानिक चरित्रांकन के साथ-साथ आज ऐसे चरित्रांकन की माँग है जो ईमानदारी के साथ मानव के यथार्थ स्वरूप की अवतारणा कर सके। चरित्रचित्रण की तीन प्रणालियाँ कहानियों में दिखलायी पड़ती हैं—वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक और नाटकीय।

वर्णनात्मक प्रणाली के द्वारा लेखक स्वयं चरित्र की विशेषताओं का वर्णन करता है। विश्लेषणात्मक कहानियों में विभिन्न मानसिक स्थितियों का विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए लेखक चरित्र की विशेषताओं का उद्घटन करता है तथा सांकेतिक प्रणाली अपनाकर चरित्र के महत्त्वपूर्ण अंशों की ओर संकेत कर देता है और मूल्यांकन पाठकों पर छोड़ देता है। नाटकीय पद्धति में वार्त्तालाप और क्रिया-व्यापार की प्रधानता होती है।

➥ कथोपकथन

कथोपकथन के मुख्यतः दो कार्य होते हैं—पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को उद्‌घाटित करना और कथा-प्रवाह को आगे बढ़ाना। कहानी में कथोपकथन को पूर्ण नियन्त्रित, चमत्कारयुक्त एवं लघुप्रसारी होना चाहिए। कहानी के आरम्भ में जिज्ञासा और कुतूहल को जगाने के लिए बहुधा नाटकीय संवादों की योजना करनी पड़ती है। परिस्थिति एवं पात्रों को जोड़ने के लिए और आन्तरिक भावों एवं मनोवृत्तियों के उद्‌घाटन के लिए संवाद-तत्त्व (कथोपकथन) की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। कथोपकथन में मात्रा और औचित्य पर भी ध्यान रखना जरूरी है। आवश्यकता से अधिक वार्त्तालाप उबा देनेवाला होता है और औचित्य का विचार न करके की गयी संवाद-योजना कहानी की प्रभावान्विति में बाधा डालती है। अतः पात्र की शिक्षा-दीक्षा, देश-काल और सामयिक स्थिति के अनुरूप ही संवादों की योजना की जानी चाहिए।

चरित्रप्रधान कहानियों में व्यक्तित्व और उसकी प्रवृत्तियों का परिचय देने के लिए कथोपकथन विशेष महत्त्वपूर्ण होता है। वार्त्तालाप द्वारा ही चारित्रिक विशेषताएँ प्रकट होती हैं। पात्र का अन्तरंग वाणी के माध्यम से उद्‌घाटित होता है। इसके लिए भावानुरूप वाक्य-

योजना एवं शब्द-चयन अपेक्षित है। कही जानेवाली बात किस युग, काल अथवा देश की है, इसका भी कथोपकथन की योजना करते समय ध्यान रखना आवश्यक है। अभिवादन, सम्बोधन, प्रेम, क्रोध आदि को व्यक्त करने के लिए औचित्य एवं मर्यादा को ध्यान में रखकर भाषा का प्रयोग आवश्यक है। इसी प्रकार विभिन्न वर्गों जैसे मजदूर, किसान, अध्यापक, ग्रामीण और नगरीय चरित्रों की दृष्टि से भी भाषा का प्रयोग करना पड़ता है। व्यावहारिक एवं भावात्मक स्थलों के अनुसार विषयानुरूप संगति बैठानेवाली वाक्य-योजना से ही कहानी सुरुचिपूर्ण एवं मार्मिक बनती है। कथानक, विषय-प्रतिपादन एवं पात्र-योजना की दृष्टि से कथोपकथन की भाषा को व्यावहारिक स्वरूप देना पड़ता है। मुहावरों का सामाजिक एवं प्रसंगानुकूल प्रयोग भी कहानीकार के लिए आवश्यक है। शिष्ट हास्य और व्यंग्य से समन्वित होकर कथोपकथन सजीव हो जाता है।

कथोपकथन के प्रायः दो रूप मिलते हैं—विशुद्ध नाटकीय और विश्लेषणात्मक। विशुद्ध नाटकीय ढंग से लेखक अपनी ओर से कुछ भी नहीं जोड़ता। दो पात्र परस्पर वार्त्तालाप करते हैं। विश्लेषणात्मक ढंग में लेखक अपनी ओर से पात्रों के सम्बन्ध में उनकी मुद्राओं और भाव-भंगिमाओं का उद्घाटन करने के लिए कथोपकथन की योजना करता है। प्रथम प्रकार के कथोपकथन की प्रणाली प्रेमचन्द की कहानी 'सुजान भगत' और दूसरे प्रकार के कथोपकथन का उदाहरण भगवतीचरण वर्मा की 'प्रायश्चित्त' कहानी में मिलता है।

➡ वातावरण

वातावरण के अन्तर्गत देश-काल और परिस्थिति आती है। लेखक घटना और पात्रों से सम्बन्धित परिस्थितियों का चित्रण सजीव रूप में करता है। सम्पूर्ण परिस्थितियों की योजना साभिप्राय और क्रमिक ढंग से की जाती है। प्रकृति, ऋतु, दृश्य आदि का अत्यन्त संक्षिप्त और सांकेतिक रूप में वर्णन करके किसी घटना अथवा परिणाम को सजीव एवं यथार्थ बना दिया जाता है। प्रेमचन्द की 'सुजान भगत' और प्रसाद की 'पुरस्कार' कहानी में इस प्रकार की योजनाएँ मानवीय प्रवृत्तियों एवं परिस्थितियों के अनुकूल की गयी हैं। वातावरण के दृश्य-विधान से न केवल चरित्र की मनःस्थिति पर प्रकाश पड़ता है, वरन् प्रेम, शोक आदि व्यापार सजीव बन जाते हैं। 'उसने कहा था' कहानी में वातावरण का यह चित्र लहनासिंह की मृत्यु की ओर संकेत देते हुए परिस्थिति को कितना बिम्बग्राही बना देता है—"लड़ाई के समय चाँद निकल आया था, ऐसा चाँद जिसके प्रकाश से संस्कृत कवियों का दिया हुआ क्षयी नाम सार्थक होता है। और हवा ऐसी चल रही थी, जैसी बाणभट्ट की भाषा में दन्तवीणोपदेशाचार्य कहलाती है।"

मनुष्य का रचनात्मक विकास और ह्रास बहुत कुछ वातावरण की ही देन है। संवेदना यदि कहानी की आत्मा है तो वातावरण उसका शरीर। 'आकाशदीप', 'पुरस्कार', 'बिसाती', 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी', 'रोज' और 'मक़ील' आदि कहानियाँ इस कथन की सार्थकता सिद्ध करती हैं। वातावरण की दृष्टि से नयी कहानियों में 'परिन्दे', 'मिस पाल' तथा 'मलबे का मालिक' आदि कहानियाँ उल्लेखनीय हैं।

वातावरण के प्रस्तुतीकरण की दो पद्धतियाँ हैं। पहले प्रकार में विषयारम्भ प्रकृति चित्रण से किया जाता है। इस प्रकार के प्रकृति-चित्रण में कहानी का प्रतिपाद्य सम्पूर्णतः ध्वनित हो जाता है। प्रकृति के खण्ड-चित्रों के विधान के द्वारा कथानक के अर्थ की विवृत्ति होती है और प्रतीक-पद्धति से कथानक का धरातल रसात्मक हो जाता है। प्रकृति का आधार पात्रों की स्थिति को प्राणमय बना देता है।

दूसरे प्रकार की पृष्ठभूमि में देश-काल और परिस्थितियों का आञ्चलिक और स्थानीय रंग उपस्थित किया जाता है। कृतिकार का रचना-कौशल इस बात में है कि वह जीवन की विभिन्न वस्तु-स्थितियों को देश और काल के परिवेश में इस प्रकार प्रस्तुत करे कि स्थानीय चित्र प्रभावपूर्ण हो जाय। वृन्दावनलाल वर्मा की कहानी 'शरणागत' में बुन्देलखण्ड की झलक और उपेन्द्रनाथ अश्क की कहानी 'डाची' में प्रान्तीय भाषा, रीति-रिवाज, वेश-भूषा और क्रिया-कलाप का ऐसा ही चित्र-विधान दिखलायी पड़ता है। इसी प्रकार विभिन्न तत्त्वों के सामूहिक संगठन की दृष्टि से परिवेश की परिधि भी निर्धारित की जाती है। कहानी के इतिवृत्त को विभिन्न परिच्छेदों एवं परिस्थितियों में विभाजित कर दिया जाता है। प्रत्येक विच्छेद का अपना एक अलग परिवेश होता है, जो अपने में पूर्ण होता है।

वातावरण कहानी के इष्ट-प्रतिपादन के लिए और प्रभाव की एकता स्थापित करने के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। करुणा, आश्चर्य, प्रेम, वात्सल्य आदि की सरसता वातावरण के प्रभाव से मुखरित होती है। वातावरण का प्रभाव मानसिक होता है। वह कथ्य की प्रेषणीयता के लिए पाठक के मानस को तैयार करता है। कुछ कहानियों में तो वातावरण इतना प्रधान होता है कि वह अंगी का रूप धारण कर लेता है। ऐसी वातावरण-प्रधान कहानियाँ प्रभाव की दृष्टि से बड़ी सजीव और कल्पनाश्रयी होती हैं।

➡ भाषा-शैली

भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करने का माध्यम भाषा है और अभिव्यक्ति का ढंग शैली है। सरल एवं बोधगम्य भाषा के द्वारा ही कहानी को प्रभावशाली बनाया जा सकता है। भाषा की क्लिष्टता और दुरूहता से कथन का अभिप्राय स्पष्ट नहीं हो पाता और

कहानी अस्वाभाविक हो जाती है। काल और पात्र की यथार्थ अभिव्यक्ति के लिए भाषा में स्वाभाविकता अपरिहार्य है। भाषा जितनी ही सरल और भावाभिव्यञ्जक होगी, उतनी ही प्रभावशाली होगी। प्रेमचन्द की कहानियों का प्रभाव पाठकों पर इसीलिए पड़ता है कि उनकी भाषा अत्यन्त सरल और सरस है।

भाषा को समर्थ और प्रभावयुक्त बनाने के लिए शब्दों के चयन पर विशेष ध्यान देना पड़ता है। चित्रात्मकता एवं प्रवाहमयता के साथ-साथ अर्थ की उपयुक्ता भी अपेक्षित है। स्वाभाविक भाषा संवेदनशील होती है। विभिन्न सन्दर्भों में कौन-सा शब्द सही चेतना एवं अर्थ को व्यंजित कर सकता है, इसका चुनाव रचनाकार की कलात्मक संवेदना पर निर्भर करता है। कहानी का आकार अत्यन्त लघु होता है, अतएव सूक्ष्म सन्दर्भों को स्पष्ट करने के लिए भाषा में संकेतों का प्रयोग करना आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार की सांकेतिक भाषा से व्यञ्जना-शक्ति बढ़ जाती है। आज की कहानियों में अनुभूति की प्रामाणिकता को चित्रित करने के लिए सांकेतिक भाषा का प्रयोग बढ़ गया है।

साधारण से साधारण कथानक में भी कुशल लेखक अपनी सुन्दर शैली से प्राण-प्रतिष्ठा कर देता है। शब्दों की सम्मोहन-शक्ति के द्वारा वह पाठकों को मन्त्रमुग्ध कर देता है। आधुनिक कहानियों में मनस्तत्त्वों के निरूपण और अवचेतन मन के विभिन्न स्तरों को खोलने के लिए विभिन्न प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया जा रहा है। इसी प्रकार प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से कुछ नयी विधियों का प्रयोग किया जाने लगा है। कहीं कहानीकार परिदृश्य पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता हुआ कमेण्टरी की विधि अपनाता है (अमरकान्त की 'घुड़सवार' कहानी) और कहीं 'फ्लैश बैक' यानी पूर्वदीप्ति की विधि का अनुसरण करते हुए पूर्व घटित अंश को सहज रूप से वर्तमान से सन्दर्भित करके प्रस्तुत करता जाता है। शिवप्रसाद सिंह की **'कर्मनाशा की हार'** इसका सशक्त उदाहरण है। दूरवीक्षण और अन्वीक्षण की विधियाँ भी वैज्ञानिक जगत् के अनुभव से ग्रहण की गयी हैं। एक में कहानीकार दूरस्थ वस्तु को निकटस्थ के रूप में चित्रित करता है, दूसरी में वह वस्तु की उस सूक्ष्मता को बहुत बारीकी से प्रस्तुत करता है जो साधारणतः लोगों को दिखायी नहीं देती। भीष्म साहनी की कहानी 'अहं ब्रह्मास्मि' रिपोर्ताज शैली में लिखी गयी ऐसी ही कहानी है जो आधुनिक युग में एक नयी साहित्यिक विधि से सम्बद्ध है।

➡ उद्देश्य

कहानी का उद्‌देश्य पुष्प में गन्ध की भाँति छिपा रहता है। प्राचीन कहानियों का उद्‌देश्य आध्यात्मिक विवेचना अथवा नैतिक उपदेश प्रदान करना था। कालान्तर में मनोरञ्जन करना अथवा महान् चरित्र के शौर्य आदि गुणों का प्रदर्शन करना कहानी का उपजीव्य बन गया। मनोरंजन अथवा उपदेश के साथ ही शाश्वत सत्य का उद्‌घाटन करना भी कथा का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोजन है।

प्रेमचन्द-युग में आदर्श की स्थापना और शाश्वत सत्य का उद्‌घाटन कहानी का प्रमुख उद्देश्य बन गया था।

कोई भी घटना, परिस्थितियाँ और कार्य लेखक के लिए निरपेक्ष रूप से महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। प्रत्येक कहानी के मूल में कोई केन्द्रीय भाव अवश्य छिपा होता है, जो कहानी का मौलिक आधार बनता है। एक ही घटना को लेकर अनेक प्रकार की कहानियाँ लिखी जा सकती हैं, परन्तु प्रत्येक का दृष्टिकोण भिन्न होने के कारण कथा का रूप बदल जाता है। यही कहानीकार की मौलिकता है। कहानी का केन्द्रीय भाव ही वह हेतु या उद्‌देश्य है, जिसके लिए कहानी लिखी जाती है। संवेदना की विशिष्ट इकाई के मूल में लेखक का एक निर्दिष्ट लक्ष्य होता है। प्रभावान्विति और संवेदनात्मक इकाई के कारण ही कहानी मुक्तक काव्य और एकांकी की समीपवर्ती कही जाती है।

हिन्दी कहानी की विकास-यात्रा

देश में कहानी का आरम्भ वैदिक युग में ही हो गया था। ऋग्वेद के यम-यमी, पुरूरवा-उर्वशी आदि के संवाद, उपनिषदों के रूपात्मक व्याख्यान, नहुष, ययाति आदि के उपाख्यान तथा ऋषियों-मुनियों की कथाएँ भारतीय कहानी के प्राचीनतम रूप हैं। लौकिक संस्कृत में उपदेश और नीतिप्रधान कथाओं का प्राचुर्य मिलता है। वृहद्कथामंजरी, कथासरित्सागर, पंचतन्त्र, हितोपदेश आदि ग्रन्थ तथा मुंज, भोज, विक्रमादित्य आदि के शौर्य और प्रणय की गाथाओं को लेकर लिखी गयी रचनाएँ कहानी के ही प्राचीन रूप हैं। संस्कृत के पश्चात् पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं में बौद्ध और जैन धर्म सम्बन्धी अनेकानेक कथायें लिखी गयी हैं। अपभ्रंश भाषा में चरित्र-काव्यों तथा कथा-काव्यों का लम्बा इतिहास मिलता है।

हिन्दी में आधुनिक कहानी के उदय के पूर्व प्राचीनकाल में संस्कृत और प्राकृत की परम्परा में कथा-साहित्य की रचना हुई। इसका आरम्भिक रूप काव्यमय है। इस कथा-साहित्य की एक परम्परा चारणों तथा अन्य कवियों द्वारा विकसित हुई, जिसमें ऐतिहासिक,

पौराणिक कथा-नायकों में कल्पना का पुट देकर उनके चरित्र-श्रवण से पुण्य का लोभ दिखाया गया। कथा-साहित्य की दूसरी परम्परा सूफियों द्वारा विकसित हुई। मृगावती, मधु-मालती, पद्मावत, चित्रावली, ज्ञानदीप, इन्द्रावती आदि ऐसे ही प्रेमाख्यानक काव्य हैं।

हिन्दी कहानियों का तीसरा प्राचीन रूप 'किस्सा', 'वृत्तान्त' आदि के रूप में मिलता है। भारतेन्दुयुगीन पत्र-पत्रिकायें इस प्रकार की कहानियों से भरी पड़ी हैं। सिंहासनबत्तीसी, बैतालपचीसी, माधवानल-कामकन्दला, राजा भोज का सपना, रानी केतकी की कहानी, देवरानी-जेठानी आदि इसी प्रकार की कहानियाँ हैं। इसी प्रकार संस्कृत-भाषा में कथा-साहित्य की जो पद्धति प्रारम्भ हुई, वह किंचित् परिवर्तन के साथ हिन्दी में भारतेन्दु तक चली आयी है। ये कहानियाँ, कथा, आख्यायिका, वृत्तान्त, वार्त्ता, किस्सा आदि अनेक रूपों में लिखी जाती रही हैं। इनका कोई स्वरूप भी निर्धारित नहीं हो सकता। ये कहानियाँ या कथाएँ गद्य-पद्य दोनों माध्यमों से लिखी जाती थीं। इनमें अप्राकृतिक तथा अतिप्राकृतिक तत्त्वों का प्राधान्य रहता था। भूत-प्रेत, पशु-पक्षी आदि कथा के विकास में सहायक होते थे। घटनाएँ नितान्त अविश्वसनीय और आश्चर्यजनक रहती थीं। इनमें स्वाभाविकता का अभाव था।

आधुनिक कहानी परम्परा और स्वरूप की दृष्टि से प्राचीन कहानी से भिन्न है। आज की कहानी का एक निश्चित लक्ष्य होता है। वह अस्वाभाविक घटनाओं और अतिमानवीय पात्रों का घटाटोप नहीं होती है। आज की कहानी जीवन के बहुत निकट आ गयी है। वह जीवन में यथार्थ की प्रतिच्छाया है। वह आज अभिव्यक्ति का सर्वाधिक सशक्त माध्यम बन गयी है। आज की कहानी मानव जीवन के किसी एक पक्ष अथवा घटना का सूक्ष्मता के साथ चित्रण करती है। इसका सम्बन्ध सामयिक जीवन से होता है। वह यथार्थ को प्रस्तुत करती है।

यूरोपीय कहानी का प्रभाव हिन्दी-कहानी पर आरम्भ में बंगला-कहानी के माध्यम से पड़ा। अमेरिका और यूरोप में आधुनिक कहानी का जन्म 19वीं शताब्दी के प्रथम चरण में हो गया था। वहाँ के प्रारम्भिक कहानी-लेखकों में हाफमैन, जेकब, ग्रिम, हाथर्न, पो, ब्रेटाहार्ट आदि का नाम लिया जाता है। पो ने सर्वप्रथम कहानी का स्वरूप और उसके लक्षण निर्धारित किये। इसी समय रूस में गांगोल, तुर्गनेव आदि कहानियाँ लिख रहे थे।

आधुनिक हिन्दी-कहानी का प्रारम्भ एक प्रकार से द्विवेदीकाल में हुआ। बंगला-भाषा से सम्पर्क, नयी शिक्षा-पद्धति, सामाजिक एवं राजनीतिक आन्दोलन, गद्य के परिष्कार आदि के परिणामस्वरूप इस विधा का सूत्रपात हुआ। सरस्वती, इन्दु, सुदर्शन आदि पत्रिकायें हिन्दी कहानियों की जननी हैं।

हिन्दी की प्रथम आधुनिक कहानी कौन है, इस पर विवाद है। इस सम्बन्ध में सात कहानियों के नाम गिनाये जाते हैं—रानी केतकी की कहानी, इन्दुमती, गुलबहार, प्लेग की चुड़ैल, ग्यारह वर्ष का समय, पण्डित और पण्डितानी तथा दुलाईवाली। रचनाकाल की दृष्टि से इनमें रानी केतकी की कहानी (इंशाअल्ला खां) सबसे पुरानी है। किन्तु कहानी-कला की दृष्टि से उसको आधुनिक नहीं कहा जा सकता। इसकी रचना प्राचीन कथा पद्धति पर हुई है। कथानक, पात्र तथा भाषा सभी इसे प्राचीन कथाओं के निकट ले जाते हैं। शेष छह कहानियों में किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' प्रथम है। यह सन् 1900 में 'सरस्वती' में छपी थी। आरम्भ में कुछ आलोचक इसे मौलिक कहानी नहीं मानते थे। वे उसे शेक्सपीयर के 'टेम्पेस्ट' का रूपान्तर प्रमाणित करते थे और रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' अथवा बंग-महिला की 'दुलाईवाली' को हिन्दी की प्रथम कहानी मानते थे। किन्तु अब यह स्पष्ट हो गया है कि 'इन्दुमती' एक मौलिक कहानी है। अतः यह हिन्दी की प्रथम आधुनिक कहानी मानी जा सकती है।

द्विवेदी-युग में मौलिक और अनूदित दोनों प्रकार की कहानियाँ लिखी गयीं। एक ओर संस्कृत, बंगला, अंग्रेजी आदि भाषाओं से कहानियों के अनुवाद हुए, दूसरी ओर जीवन की झाँकी उपस्थित करनेवाली आदर्शवादी और यथार्थवादी मौलिक कहानियों का भी सृजन हुआ। इस युग के प्रमुख कहानीकारों में किशोरीलाल गोस्वामी, गिरिजाकुमार घोष, गोपालराम गहमरी, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', जयशंकर प्रसाद और प्रेमचन्द के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके द्वारा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, वैज्ञानिक आदि सभी विषयों पर कहानियाँ लिखी गयीं। इस काल में घटनाप्रधान, चरित्रप्रधान, वातावरणप्रधान तथा भावप्रधान कहानियों की अधिकता रही है। शैली की दृष्टि से इस समय आत्म-कथात्मक से लेकर स्वप्न-शैली तक में कहानियाँ लिखी गयी हैं। कहानीकारों में पार्वतीनन्दन, सूर्यनारायण दीक्षित तथा रूपनारायण मुख्य हैं। गदाधरसिंह ने 'कादम्बरी' का, जगन्नाथप्रसाद त्रिपाठी ने 'हर्षचरित' और 'रत्नावली' का तथा सूर्यनारायण दीक्षित ने 'जैमिनीकुमार' का अनुवाद किया। बंगला की कहानियों का अनुवाद पार्वतीनन्दन, बंग महिला आदि ने प्रस्तुत किया।

मौलिक कहानीकारों में किशोरीलाल ने सामाजिक कहानियाँ लिखीं। 'चन्द्रिका', 'इन्दुमती' और 'गुलबहार' आपके कहानी-संग्रह हैं। इनकी कहानियों पर जासूसी उपन्यासों का प्रभाव देखा जा सकता है। रामचन्द्र शुक्ल मूलतः निबन्धकार और आलोचक के रूप में प्रसिद्ध हैं, किन्तु उन्होंने 'ग्यारह वर्ष का समय' नामक एक कहानी भी लिखी। इसी प्रकार महावीरप्रसाद द्विवेदी ने कुछ कहानियाँ लिखीं जो 'सरस्वती' के विभिन्न अंकों में प्रकाशित हुईं। 'स्वर्ण की झलक' आपकी प्रसिद्ध कहानी है। इस समय के जासूसी कहानियाँ लिखनेवालों में गोपालराम गहमरी अग्रगण्य हैं। 'त्रिवेणी', 'तीन तहकीकात' तथा 'गल्पपंचक' आपके कहानी-संग्रह हैं। इन कहानियों में उपदेश की प्रवृत्ति पायी जाती है।

द्विवेदी-युग के उत्तरार्द्ध में हिन्दी-कहानी का उत्कर्ष दिखायी पड़ता है। इसमें कहानी-कला का परिष्कार होता है, शिल्प में प्रौढ़ता आती है और घटनाओं की अपेक्षा चरित्र को महत्त्व मिलता है। गुलेरी जी की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' इसी समय 'सरस्वती' में छपी। इसके अतिरिक्त उनकी दो अन्य कहानियाँ 'सुखमय जीवन' तथा 'बुद्धू का काँटा' भी प्रकाश में आयी। 'उसने कहा था' कहानी कलात्मक प्रौढ़ता, नये शिल्प, सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण आदि की दृष्टि से अपने समय तक की सर्वोत्कृष्ट कहानी है। चतुरसेन शास्त्री इस युग के अन्तिम चरण के कहानीकार हैं। 'रजकण', 'अक्षत', 'बाहर भीतर', 'दुखवा मैं कासे कहूँ' आदि आपके प्रमुख संग्रह हैं। आपकी कहानियाँ सामाजिक यथार्थ को लेकर चली हैं। प्रसाद और प्रेमचन्द ने भी इसी समय हिन्दी-कहानी-जगत् में प्रवेश किया।

सन् 1911 में 'इन्दु' नामक पत्रिका का प्रकाशन हुआ और उसी वर्ष प्रसाद की पहली कहानी 'ग्राम' प्रकाशित हुई। उसके बाद प्रसाद जी 'इन्दु' तथा अन्य पत्रिकाओं में निरन्तर कहानियाँ लिखते रहे। ये कहानियाँ पाँच संग्रहों—छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आँधी और इन्द्रजाल में संकलित हैं। प्रसाद जी की कहानियों की पृष्ठभूमि सांस्कृतिक है जिसमें भावुकता, कल्पना और रोमान्स का समन्वय मिलता है। वे प्रेम के उन्मुक्त रूप के पक्षधर थे। उनकी कहानियों में प्रेम के विविध पक्ष और नारी-चरित्र के अनेक रूप देखने को मिलते हैं। प्रसाद जी का नाटककार-रूप भी उनकी कहानियों में देखा जा सकता है। 'आकाशदीप', 'पुरस्कार' आदि कहानियों में नाटकीय संवादों और अभिनयात्मक पद्धति से पात्रों के चरित्र विकसित होते हैं। उनकी कहानियों की भाषा संस्कृतनिष्ठ और काव्यात्मक है। भारतीय संस्कृति के परिवेश में लिखी गयी उनकी कहानियाँ आदर्शवादी वर्ग में आती हैं।

हिन्दी में प्रेमचन्द की पहली कहानी 'सौत' सन् 1915 में 'सरस्वती' में छपी थी, यद्यपि उसके पूर्व वे धनपतराय और नवाबराय के नाम से उर्दू में कई कहानियाँ लिख चुके थे। सन् 1936 तक उन्होंने लगभग 300 कहानियों की रचना की, जो हिन्दी की प्रमुख पत्रिकाओं (सरस्वती, माया, जागरण, मर्यादा, माधुरी, हंस, विशाल भारत आदि) में छपती रहीं। प्रेमचन्द अपने युग के श्रेष्ठतम कहानीकार थे। उन्होंने हिन्दी कहानी को विस्तृत आयाम दिया और कहानी को केवल मनोरंजन तक सीमित न रखकर जीवन से जोड़ा। कथानक के आधार पर उनकी कहानियों के तीन वर्ग बनाये जा सकते हैं– घटनाप्रधान, चरित्रप्रधान और भावप्रधान। उन्होंने अपने समय तक प्रचलित सभी शैलियों को अपनाया तथा सामाजिक, राजनीतिक, पौराणिक, ऐतिहासिक आदि सभी विषयों पर कहानियाँ लिखीं। प्रेमचन्द की प्रारम्भिक कहानियों में घटनाओं की प्रधानता है। दूसरे चरण की कहानियों में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं को उठाकर उनका आदर्शमूलक समाधान खोजने की चेष्टा की गयी है।

राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह इस युग के आदर्शवादी कहानीकार हैं। 'कानों में कँगना' उनकी प्रसिद्ध कहानी है। विश्वम्भरनाथ और ज्वालादत्त शर्मा भी इसी युग के कहानीकार हैं। विश्वम्भरनाथ की कहानियों का एक संग्रह 'घूँघटवाली' उपलब्ध है। विश्वम्भरनाथ ने नारी-जीवन के विभिन्न पक्षों को अपनी कहानियों में उद्घाटित किया है। शर्मा जी भी प्रेमचन्द की परम्परा के कहानीकार हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में सामाजिक कुरीतियों और अंधविश्वासों पर प्रबल कशाघात किया है। उनका दृष्टिकोण सुधारवादी था। वृन्दावनलाल वर्मा इस युग के ऐतिहासिक कथाकार हैं। इनकी कहानियों में बुन्देलखण्ड का जीवन उभरकर आया है। 'राखी', 'कलाकार का दण्ड', 'युद्ध के मोर्चे से' आदि इनकी लोकप्रिय कहानियाँ हैं। जी0 पी0 श्रीवास्तव की कहानियाँ हास्य-व्यंग्य की शैली में लिखी गयी हैं। 'लम्बी दाढ़ी' उनकी अच्छी कहानियों का संग्रह है।

द्विवेदी-युग के पश्चात् हिन्दी-कहानी में शिल्प एवं विषय दोनों दृष्टियों से परिवर्तन होता है। सामयिक, राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ हिन्दी-कहानी को भी प्रभावित करती हैं। राजनीति के क्षेत्र में यह समय अत्यन्त कोलाहल एवं अशान्ति का था। गाँधी के नेतृत्व में स्वाधीनता-आन्दोलन प्रबल होता जा रहा था। उधर सरकारी दमन भी उग्र होता जा रहा था। सन् 1914-19 में प्रथम विश्वयुद्ध हुआ। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियों पर उसका व्यापक प्रभाव, सन् 1930 की गोलमेज परिषद्, सन् 1939 में काँग्रेस मन्त्रिमण्डलों द्वारा त्यागपत्र, द्वितीय विश्वयुद्ध, सन् 1942 की जनक्रान्ति और 15 अगस्त, 1947 को भारत का स्वाधीन होना इन घटनाओं की पृष्ठभूमि में हिन्दी-कहानी का स्वरूप-परिवर्तन स्वाभाविक था। फलतः घुटन, निराशा, कुण्ठा का स्वर कहानी में आ गया। इस समय सामाजिक युग-बोध और यथार्थपरक कहानियाँ लिखी गयीं। कुछ कहानियाँ आत्मपरक दृष्टिकोण को भी लेकर लिखी गयीं। इस युग की कहानियाँ कथानक की दृष्टि से दो प्रकार की हैं—स्थूल कथानकवाली कहानियाँ, सूक्ष्म कथानकवाली कहानियाँ। विषय की दृष्टि से इस युग में सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, राजनीतिक, सैद्धान्तिक और ऐतिहासिक कहानियाँ लिखी गयीं। इस युग की कहानियों का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण लक्षण है–उनका शैलीगत वैविध्य। नवीनता की दृष्टि से नाटकीय शैली (यशपाल : उत्तराधिकारी, रांगेय राघव : मृत्यु), पत्रात्मक शैली (अज्ञेय : सिग्नलर), डायरी-शैली (इलाचन्द्र जोशी : मेरी डायरी के नीरस पृष्ठ), प्रतीक-शैली (जैनेन्द्र : पाजेब), स्वगत-शैली (जैनेन्द्र : क्या हो) तथा स्वप्न-शैली (अज्ञेय : चिड़ियाघर) विशेष ध्यान आकर्षित करती हैं।

इस युग के प्रमुख कहानीकार हैं—जैनेन्द्रकुमार, सियारामशरण गुप्त, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर, उपेन्द्रनाथ अश्क, रांगेय राघव, विष्णु प्रभाकर, अमृतराय आदि। जैनेन्द्रकुमार बुद्धिवादी लेखक हैं। उनकी कहानियों में व्यक्तिगत चरित्र एवं जीवन-दर्शन का वैशिष्ट्य मिलता है। उनके पात्रों का चरित्र-विश्लेषण मानसिक द्वन्द्व एवं घात-प्रतिघात से हुआ है। सियारामशरण गुप्त आदर्शवादी कहानीकार हैं। वे पिछली परम्परा के अधिक निकट हैं। उनकी कहानियों का संग्रह 'मानसी' नाम से प्रकाशित हुआ है। अज्ञेय मनोवैज्ञानिक कहानीकार हैं। इनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं—'विपथगा', 'परम्परा', 'कोठरी की बात', 'शरणार्थी' और 'जयदोल'। अज्ञेय फ्रायड के दर्शन से बहुत प्रभावित हैं, इसीलिए उनकी कहानियों में सेक्स सम्बन्ध, कुण्ठा और घुटन का मनोविश्लेषण मिलता है। यशपाल मार्क्सवादी विचारधारा के प्रगतिशील लेखक हैं। वर्ग-वैषम्य और आर्थिक-वैषम्य उनकी कहानियों में मुख्य रूप से उभरे हैं। भगवतीचरण वर्मा ने अपनी कहानियों में मध्यवर्गीय जीवन को यथार्थवादी अभिव्यक्ति दी है। उनकी कहानियों का धरातल अपेक्षाकृत वैयक्तिक एवं बौद्धिक है।

अमृतलाल नागर यथार्थवादी कहानीकार हैं। ग्राम्य जीवन की नग्न और वास्तविक परिस्थितियाँ उनकी कहानियों में पायी जाती हैं। उनकी शैली व्यंग्यात्मक है। अश्क जी की कहानियों में निम्न-वर्ग का यथार्थपरक चित्रण मिलता है। 'पलंग' उनकी कहानियों का अच्छा संग्रह है। उन्होंने समस्या प्रधान एवं मनोवैज्ञानिक कहानियाँ भी लिखी हैं। रांगेय राघव की कहानियाँ प्रगतिशील दृष्टिकोण से प्रभावित हैं। अमृतराय भी समाजवादी विचारधारा के कहानीकार हैं। 'एक साँवली लड़की', 'कस्बे का एक दिन' आदि उनकी श्रेष्ठ कहानियाँ हैं।

स्वतन्त्रता के बाद आधुनिक कहानी में एक युगान्तर आया है। नयी कहानी के प्रथम चरण में ग्राम-कथाओं में भी ठहराव आ गया था। मनोवैज्ञानिक फार्मूलों अथवा नारेबाजी से भरा यथार्थवाद अब आकर्षण की वस्तु नहीं रह गया। इसी समय ग्रामीण क्षेत्रों से आये लेखकों ने ताजगी से भरे ग्राम-जीवन को नये शैली-शिल्प में प्रस्तुत किया। उनकी कहानियाँ पहले की कहानियों से भिन्न थीं। इन कथाकारों ने खण्डित जीवन की विभिन्न समस्याओं को लेकर कहानी के क्षेत्र में शिल्प और विषय की दृष्टि से नये प्रयोग किये हैं।

युगीन परिस्थितियों ने कहानी के स्वरूप-निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। स्वतन्त्रता के बाद देश के समक्ष अनेक समस्याएँ उपस्थित हो गयी हैं। सब कुछ पुराना ध्वस्त हो रहा और नयी रूप-रेखा प्रस्तुत हो रही है। सामाजिक जीवन और विचार दोनों ही क्षेत्रों में उत्क्रान्ति हो रही है। फलतः साहित्यकार के ऊपर नयी जिम्मेदारियाँ आयी हैं। प्रतिदिन स्थितियों में परिवर्तन हो रहा है और इस नवीन सामयिक सन्दर्भ से नयी कहानी भी प्रभावित है। कहानीकारों के सामने भाव-बोध के नवीन स्तर, सौन्दर्य-बोध के नये आयाम और कल्पना के नये क्षितिज उद्घाटित हो रहे हैं।

प्रेमचन्दोत्तर कहानियों में पिछले बीस वर्षों तक शहरी मध्यवर्गीय एवं निम्न-मध्यवर्गीय जीवन का चरित्र अंकित किया जाता रहा है। बाद के कथाकारों का ध्यान ग्रामीण सन्दर्भों की ओर गया। गाँव का जीवन तेजी से बदल रहा है। इस परिवर्तित जीवन-धरातल का स्वरूप आञ्चलिक कथाओं में बड़े सजीव और यथार्थ रूप में उभरता रहा है। स्वातन्त्र्योत्तर काल में कहानी के अन्तर्गत यान्त्रिक जड़ता, व्यक्ति की कुण्ठा, मानसिक उलझन, संक्रमणकालीन मनःस्थिति आदि का चित्रण हो रहा है। नयी पीढ़ी के इन कथाकारों के प्रथम वर्ग में रेणु, मार्कण्डेय, भारती, निर्गुण, शैलेश मटियानी, शिवप्रसाद सिंह, शेखर जोशी, शिवानी आदि प्रमुख हैं। दूसरे वर्ग के कहानीकारों में मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मन्नू भण्डारी, निर्मल वर्मा, रघुवीर सहाय, भीष्म साहनी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें नगर-जीवन की जटिलताओं का विशेष अंकन हुआ है। इस युग की कहानियों में भोगे हुए जीवन को अभिव्यक्ति मिली है तथा संवेदना और सूक्ष्म निरीक्षण के सशक्त धरातल प्रकट हुए हैं। शहर और गाँव की भेदक-रेखा छोटी हुई है। शब्द-प्रयोग और शैली का तौर-तरीका बदला है। बिम्ब और सांकेतिकता के नये सन्दर्भ दिखलायी पड़ते हैं।

नयी कहानी का नया आन्दोलन जन्म ले रहा है और नये एवं पुराने के विवाद का दौर चल रहा है। आरम्भ में कहानी का जो शिल्प स्वीकार किया गया था, उसका उत्तरोत्तर विकास हुआ है। साठोत्तरी पीढ़ी के कहानीकारों की दृष्टि निःसन्देह अधिक खरी और प्रश्नात्मक है। ज्ञानरंजन की 'घण्टा', काशीनाथ सिंह की 'सुख', दूधनाथ सिंह की 'रक्तपात', रवीन्द्र कालिया की 'नौ साल छोटी पत्नी', महेन्द्र भल्ला की 'एक पति के नोट्स' आदि कहानियाँ युग के नये भयावह विडम्बनापूर्ण सम्बन्धों का साक्षात्कार करती हैं। गिरिराज किशोर, विजयमोहन सिंह, गोविन्द मिश्र, ममता कालिया, प्रयाग शुक्ल आदि की कहानियाँ आज के जटिल सन्दर्भों को उजागर करती हैं। इस प्रकार आज की हिन्दी कहानी शिल्प और कथ्य दोनों दृष्टियों से विश्व की कहानियों के समकक्ष आ गयी है।

●●●

संकलित कहानियों का सारांश

बलिदान

बलिदान कहानी जमींदारी के दिनों की एक काश्तकार किसान गिरधारी की कहानी है। ग्रामीण क्षेत्रों में धनवान ही प्रभावशाली होता है। गिरधारी के पिता हरखू की आर्थिक स्थिति अच्छी थी। उनकी पाँच बीघा जमीन कुएँ के निकट, खाद-पाँस से लदी हुई मेड़-बाँध से ठीक थी। उनमें तीन-तीन फसलें पैदा होती थीं। समय बदलता है। हरखू बीमार पड़ गया। पाँच महीने कष्ट भोगने के बाद ठीक होली के दिन उसकी मृत्यु हो गयी। गिरधारी ने बड़ी धूमधाम से पिता की अन्तिम क्रिया कराई। कुछ दिनों के बाद जमींदार ओंकारनाथ ने गिरधारी को बुलाकर कहा कि नजराना देकर जमीन अपने पास रखो, हम लगान नहीं बढ़ाएँगे। वैसे तुम्हारी जमीन लेने के लिए गाँव के कई लोग दूना नजराना और लगान देने के लिए तैयार हैं। नजराना सौ रुपये से कम न होगा। गिरधारी उदास और निराश होकर घर लौट आया। वह सभी विकल्पों पर सोचता रहा किन्तु सौ रुपये की व्यवस्था करना असम्भव हो गया। तब जो होना था, वही हुआ। गाँव के ओंकारनाथ ने उसकी जमीन अपने नाम करा लिया। उस दिन घर में चूल्हा नहीं जला, ऐसा लगा उसका बाप हरखू आज ही मरा है। वह अब तक गृहस्थ था, समाज में मान था, उसकी मर्यादा थी। अब उसे मजदूरी करनी पड़ेगी। कुछ ही दिनों में उसके बैल भी बिक गये जिनकी चिन्ता उसे अपने से अधिक थी। बैलों के चले जाने के बाद वह अन्दर से टूट गया। रात को गिरधारी ने कुछ नहीं खाया। चारपायी पर पड़ा रहा। सुबह उसकी पत्नी ने उसे चारों तरफ ढूँढ़ा किन्तु वह कहीं नहीं मिला। चारों ओर खोज होने लगी, पर गिरधारी का पता नहीं चला। गिरधारी को गायब हुए 6 महीने बीत गये। एक दिन सुबह उसकी पत्नी सुभागी ने देखा कि गिरधारी बैलों के नाँद के पास सिर झुकाये खड़ा है। सुभागी उसकी तरफ बढ़ी तो गिरधारी पीछे हटता हुआ गायब हो गया। इसी तरह एक दिन सुबह अँधेरे कालिकादीन हल-बैलों को लिये खेत पर पहुँचा और बैलों को हल में लगा रहा था कि देखा कि गिरधारी खेत की मेड़ पर खड़ा है। वह उससे बात करने आगे बढ़ा। गिरधारी पीछे हटने लगा और पीछेवाले कुएँ में कूद पड़ा। कालिकादीन हल-बैल छोड़ चीखकर गाँव में भागा। सारे गाँव में शोर मच गया। कालिका को गिरधारीवाले खेतों में जाने की हिम्मत न पड़ी। कालिकादीन ने गिरधारी के खेतों से इस्तीफा दे दिया क्योंकि गिरधारी अपने खेतों के चारों ओर मँडराया करता था। अँधेरा होते ही वह खेत के मेड़ पर आकर बैठ जाता है। कभी-कभी रात में उसके रोने की आवाज सुनाई पड़ती है। वह किसी से न बोलता है और न किसी को छेड़ता है। लाला ओंकारनाथ बहुत चाहते हैं कि कोई इन खेतों को ले ले किन्तु लोग नाम लेने से ही डरने लगते हैं। गिरधारी ने खेतों के लिए आत्म-बलिदान दे दिया था।

आकाशदीप

आकाशदीप महाकवि अमर कहानीकार जयशंकर प्रसाद की कालजयी कहानियों में से एक है। कहानी की मुख्य पात्र चम्पा जाह्नवी नदी के तट पर बसी चम्पा-नगरी की क्षत्रिय बालिका थी। उसके पिता व्यवसायी मणिभद्र के यहाँ प्रहरी का काम करते थे। माता का देहावसान हो जाने पर वह भी पिता के साथ नाव पर ही रहने लगी। पिछले आठ वर्षों से समुद्र ही उसका घर। बुद्धगुप्त के आक्रमण के समय चम्पा के पिता ने आठ जल दस्युओं को मारकर जल समाधि ली थी। एक महीने से वह नीले आकाश और नीचे समुद्र के ऊपर निस्सहाय, अनाथ होकर रह रही है। एक दिन मणिभद्र ने उससे घृणित प्रस्ताव किया। उसने उसे गालियाँ सुनाईं। उसी दिन से वह बन्दी बना दी गई। अपनी आत्मकथा बुद्धगुप्त को वह उस समय सुनाई जब दोनों बन्दी जीवन से मुक्त हो गये थे। बुद्धगुप्त भी ताम्रलिप्ति का एक क्षत्रिय युवक था। दुर्भाग्य से जलदस्यु बन गया था। उसी के आक्रमण में चम्पा के पिता की मृत्यु हुई थी। बाद में किसी आक्रमण में बुद्धगुप्त भी बन्दी हो गया था। संयोग से दोनों बन्दी एक ही नाव पर थे। रात्रि में समुद्री आँधी में नाव डगमगाने लगी, अँधेरा घिर गया था। हवा के कोलाहल में कुछ सुनाई नहीं पड़ रहा था। उसी समय चम्पा बुद्धगुप्त से स्वतन्त्र होने का अवसर बताकर उसे एक नाविक की कटार लाकर देती है। बन्दी स्वतन्त्र होकर ढुलककर उस रज्जु के पास पहुँचा जो पोत से संलग्न थी। उसने रज्जु काट दी। नाव पोत से स्वतन्त्र

हो गयी। सुबह बुद्धगुप्त ने नायक को वशीभूत करके नाव का स्वामी बन गया। वे दोनों एक नये द्वीप पर पहुँचे। उस द्वीप का नाम चम्पा-द्वीप रखा गया। चम्पा और बुद्धगुप्त ने उसे अपना स्थायी निवास बनाया। चम्पा ने बुद्धगुप्त के कठोर हृदय में कोमलता पैदा कर दी थी। बुद्धगुप्त व्यापार करने लगा। द्वीप पर महानाविक बुद्धगुप्त को वहाँ के निवासी राजा और चम्पा को महारानी के रूप में मानकर उनकी सेवा में लगे रहते थे। चम्पा प्रतिदिन समुद्र के तट पर ऊँचे स्थान पर दीपक जलाया करती थी और उसे रस्सी की सहायता से ऊँचे स्थान पर पहुँचाती थी। एक दिन महानाविक ने पूछा कि ऐसा तुम क्यों करती हो तो चम्पा ने कहा, मैं अपने पिता के लिए, भूले-भटके लोगों को पथ दिखाने के लिए दीप जलाती हूँ। भगवान् भी भटकते हैं, भूलते हैं, नहीं तो बुद्धगुप्त को इतना ऐश्वर्य क्यों देते? 'तो इसमें बुरा क्या हुआ, इस द्वीप की अधीश्वरी चम्पारानी।' बुद्धगुप्त ने कहा। चम्पा कहती है कि यह सब मुझे अच्छा नहीं लगता। वे दिन अच्छे थे जब खुले आकाश में हम लोग परिश्रम से थक कर पालों से शरीर लपेट कर पड़े रहते थे। बुद्धगुप्त ने कहा, "तो चम्पा हम अब और अच्छे से रह सकते हैं। तुम मेरी प्राणदात्री, मेरी सर्वस्व हो।" चम्पा अपनी माँ एवं पिता का जीवन स्मरण करते हुए क्रोधावेश में कहती है, "मेरे पिता, वीर पिता की मृत्यु के निष्ठुर कारण, जलदस्यु! हट जाओ!" बुद्ध बहुत प्रयास करता है कि चम्पा उसे क्षमा कर दे किन्तु चम्पा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। वह कहता है, "आह चम्पा तुम इतनी निर्दय हो! यदि आज्ञा दो तो मैं अपना हृदय पिण्ड निकालकर अतल जल में विसर्जन कर दूँ।" चम्पा कहती है, "मैं तुमसे घृणा करती हूँ, फिर भी तुम्हारे लिये मर सकती हूँ। अँधेर है जलदस्यु। तुम्हें प्यार करती हूँ।" बुद्धगुप्त कहता है, "इस जीवन की पुण्यतम घड़ी की स्मृति से एक प्रकाश-गृह बनवाऊँगा, चम्पा! यहीं उस पहाड़ी पर। संभव है कि मेरे जीवन की धुँधली संध्या उससे आलोकपूर्ण हो जाय।" द्वीप स्तम्भ बनवाया गया। भव्य समारोह में चम्पा को बताया गया कि आज रानी की शादी होगी। चम्पा बुद्धगुप्त को फटकारती है। बुद्धगुप्त चम्पा के पैर पकड़ लिये और कहा कि तुम्हारे पिता का घातक नहीं हूँ। वह बहुत अनुनय-विनय करता है। किन्तु चम्पा कहती है, "तुम स्वदेश लौट जाओ, मैं इन निरीह भोले-भाले प्राणियों की सेवा करूँगी।" महानाविक स्वदेश चला गया। चम्पा उसी द्वीप पर रहकर आजीवन द्वीप-स्तम्भ पर दीप जलाती रही। वह भी जलती रही जैसे आकाश-दीप।

प्रायश्चित

कबरी बिल्ली से परेशान राम की बहू के लिए खाना-पीना दुश्वार हो गया था, किन्तु कबरी बिल्ली घर भर में किसी से प्रेम करती थी, तो रामू की बहू से। रामू की बहू दो महीने हुए मायके से ससुराल आयी थी। पति की प्यारी, सास की दुलारी, चौदह वर्ष की बालिका को भण्डार-घर की चाभी सौंप दी गयी थी। परिपक्वता के अभाव में वह सावधान नहीं रहती थी। कबरी बिल्ली रामू की बहू की असावधानी का लाभ उठाकर दूध, घी, मक्खन प्रतिदिन चट कर जाती थी। इस कारण उसे मिलती थी सास की मीठी झिड़कियाँ और पतिदेव को मिलता था रूखा-सूखा भोजन। एक दिन रामू के लिए खीर बनायी और कटोरा भरकर उसे ऐसे ऊँचे ताक पर रखा ताकि कबरी बिल्ली वहाँ तक न पहुँच सके फिर वह जाकर पान लगाने लगी। इसी बीच न जाने कहाँ से कबरी बिल्ली आयी, नीचे खड़े होकर ऊपर देखा, सूँघा और उछल कर ताक से कटोरा गिरा दिया। रामू की बहू आयी तो देखा फूल का कटोरा टुकड़े-टुकड़े और फर्श पर बिल्ली खीर उड़ा रही है। उसे देखकर बिल्ली चम्पत हो गयी। उसी दिन रामू की बहू कबरी की हत्या करने के लिए कमर कस ली। उस पर खून सवार हो गया। रात भर उसे नींद नहीं आयी। सुबह देखती है कि कबरी देहरी पर बैठी बड़े प्रेम से उसे देख रही है। वह मुस्कराती हुई उठी। उसे उठते देख बिल्ली खिसक गयी। रामू की बहू एक कटोरा दूध कमरे के दरवाजे पर रखकर चली गयी फिर पाटा लेकर लौटी, कबरी दूध पर जुटी हुई थी। उसने पाटा बिल्ली पर फेंका, कबरी एकदम उलट गयी। महरी दौड़ी आयी–"अरे राम! बिल्ली तो मर गयी।" सासू आयीं फिर गाँव की औरतें। पूरे गाँव में बिल्ली की हत्या की खबर फैल गयी। पण्डित परमसुख बुलाये गये। उन्होंने कहा कि बिल्ली की हत्या ऐसा-वैसा पाप नहीं, रामू की माँ! बहू के लिए कुम्भीपाक नरक है। बहुत मिन्नत के बाद पण्डित जी ने कहा कि प्रायश्चित के लिए ग्यारह तोला सोना निकालो, मैं उसकी बिल्ली बनवा लाऊँ। दो घण्टे में लौटूँगा तब तक पूजा का प्रबन्ध करो और देखो पूजा के लिए.....। पण्डित जी की बात खतम नहीं हुई थी कि महरी हाँफती हुई कमरे में घुसी और सबको चौंकाते हुए बोली–"माँ जी! बिल्ली तो उठकर भाग गयी।"

समय

यह एक नौकरीपेशा मध्यम परिवार की कहानी है। नौकरी से रिटायर होने के बाद अवकाश का बोझ चिन्ता का कारण बन जाता है। बच्चे बड़े हो जाते हैं। पीढ़ी का अन्तर, विचारों का अन्तर सब अपने-अपने व्यक्तित्व के अनुसार गतिमान रहते हैं। वृद्धावस्था की संवेदना पीढ़ी के अन्तर से प्रभावित होती है। कथा के नायक पापा का विचार था कि रिटायर होने के बाद अध्ययन का मनचाहा

अवसर होगा, दूसरों के आदेश से मुक्ति मिलेगी। पापा को बूढ़े और बुजुर्ग समझे जाने से सदा विरक्ति रही है। सर्विस के दौरान वे गर्मियों में महीने-दो-महीने हिल स्टेशनों पर चले जाते थे किन्तु अब वे पहाड़ पर जाना छोड़ चुके हैं। पहले जब पहाड़ जाते तो चढ़ाइयों पर सुविधा के लिए छड़ियाँ जरूर खरीदते थे किन्तु लौटने पर छड़ी का प्रयोग नहीं करते थे। वे सोचते थे कि छड़ी टेककर चलना बुढ़ापे या बुजुर्गी के लक्षण हैं, किन्तु वे स्वयं को स्वस्थ अनुभव करते थे। वे सुबह-शाम टहलने जाते तो केवल अपनी पत्नी के साथ। बच्चों को नौकरानी के साथ बाहर भेज देते थे। सर्विस के दौरान जब कभी बच्चे साथ होते तो बच्चों के ठुनकने से ही मनचाही चीज उन्हें मिल जाती थी। वे बच्चों को डाँटते-धमकाते नहीं थे। अवकाश-प्राप्ति के बाद वे नियमित कार्यक्रम के अनुसार काम में स्वयं को व्यस्त रखते थे। हल्की-फुल्की चीजें खरीदने के लिए वे सन्ध्या समय पैदल ही हजरतगंज चले जाते थे। अवकाश-प्राप्ति के बाद उनके स्वभाव और व्यवहार में अनेक परिवर्तन आये। पहले उन्हें अपने लिये अच्छी बढ़ियाँ चीजें खरीदने का और अच्छी पोशाक का शौक था किन्तु अब वे नये कपड़े के अनुरोध को टाल कर पुराने कपड़ों को पर्याप्त बताते थे। पापा के बच्चों को बाजार साथ न ले जाने के रवैये में भी अन्तर आया। अब वे किसी-न-किसी को साथ ले जाना चाहते थे। सुबह-शाम किसी को साथ लेकर टहलने जाना पसन्द करने लगे। अब वे छड़ी लेकर भी चलने लगे। लगभग एक वर्ष से उनकी नजर पर आयु का प्रभाव हो रहा था। अधिक देर तक पढ़ने-लिखने से धुँधलापन अनुभव होने लगा था। सड़क पर कम प्रकाश में ठोकर लगने और अधिक चकाचौंध से परेशानी अनुभव करते थे। स्थिति यह पैदा हो गयी थी कि वे बिना किसी को साथ लिये बाहर नहीं जा सकते थे। एक दिन ऐसा हुआ कि कोई उनके साथ जाने के लिए तैयार नहीं हुआ। कहने पर मन्टू भी नहीं गया। उसने पुष्पा दीदी से कहा–''तुम भी क्या दीदी....बोर....बुड्ढों के साथ कौन बोर हो।'' पापा हैंगर से कोट पहनने जा रहे थे। शायद ये बातें सुनकर एक विचित्र, विषण्ण-सी मुस्कान के साथ कोट हाथ में लिये कुर्सी पर बैठ गये। नजर फर्श की ओर झुक गयी।

ध्रुव-यात्रा

राजा रिपुदमन उत्तरी ध्रुव की यात्रा सफलतापूर्वक पूर्ण करके लौटते समय यूरोप के नगरों में जहाँ-जहाँ रुके वहाँ उनका भरपूर सम्मान हुआ। अखबारों में प्रकाशित इस खबर को पढ़कर उर्मिला प्रसन्न होकर अपने सोते शिशु का चुम्बन लिया। कई दिन तक अखबारों में ध्रुवयात्रा की खबर छपती रही और उर्मिला उसे पढ़ती रही। रिपुदमन मुम्बई आ पहुँचे, वहाँ भी उनका भरपूर स्वागत हुआ। शिष्टमण्डल के अनुरोध पर राजा रिपुदमन दिल्ली आये। वे सबसे सौजन्य से मिलते हैं। ऐसा लगा कि उन्हें प्रदर्शनों में उल्लास नहीं है। एक संवाददाता ने लिखा कि मैं मिला तो उनके चेहरे से ऐसा लगा कि वे यहाँ न हों, जाने कहीं दूर हों। उर्मिला ने इसे पढ़ा और अखबार अलग रख दिया। रिपुदमन ने यूरोप में आचार्य मारुति की ख्याति सुनी थी किन्तु दिल्ली में रहकर भी वे आचार्य मारुति को नहीं जानते थे। अवकाश पाते ही वे आचार्य मारुति के पास पहुँचे। अभिवादन के बाद मारुति ने पूछा कि वैद्य के पास रोगी आते हैं विजेता नहीं तो रिपुदमन ने कहा कि मुझे नींद नहीं आती, मन पर मेरा काबू नहीं रहता। आचार्य मारुति और राजा रिपुदमन में काफी देर तक बातें हुईं। रिपुदमन विवाह को बन्धन मानता है किन्तु प्रेम से इनकार नहीं करता है। एक दिन राजा रिपुदमन सिनेमा हाल के एक बाक्स में उर्मिला से मिलता है। उर्मिला उसकी प्रेमिका और उसके बेटे की माँ है। यह बात उन दोनों के अलावा तीसरा व्यक्ति नहीं जानता है। काफी बातें होती हैं। बच्चे का नाम रिपुदमन माधवेन्द्र बहादुर रखता है। उर्मिला पूछती है कि तुम अपना काम बीच में छोड़कर क्यों चले आये? वह कहती है तुम्हें मेरी और मेरे बच्चे की चिन्ता करना काम नहीं है। रिपुदमन कहता है कि मैं केवल तुम्हारा हूँ, तुम जो कहोगी वही करूँगा। क्या तुम अब भी नाराज हो। उर्मिला कहती है कि मुझे तुम पर गर्व है। तुम्हारा काम अब दक्षिणी ध्रुव पर विजय करना है, तुम्हें जाना ही होगा। यदि मेरे कारण तुम नहीं जाओगे तो मैं अपने को क्षमा नहीं कर पाऊँगी। मारुति की बात चलती है तो उर्मिला उसे ढोंगी कहती है किन्तु रिपुदमन के कहने पर वह मारुति के पास जाती है किन्तु उसके कहने पर विवाह के लिए तैयार नहीं होती है। मारुति रिपुदमन को बताता है कि उर्मिला उसकी सगी पुत्री है। उसे विवाह करके साथ रहना चाहिए। वह भी यही चाहता है किन्तु उर्मिला के हठ के कारण वह तीसरे दिन दक्षिणी ध्रुव जाने के लिए अमेरिका फोन पर बातें कीं और बताया कि परसों शटलैण्ड द्वीप के लिए पूरा जहाज हो गया है। उर्मिला के कुछ दिन रुकने के लिए कहने पर वह रुकने के लिए तैयार नहीं हुआ। इस खबर से अखबारों में धूम मच गयी। वह दिन भी आ गया जब रिपुदमन उससे दूर चला गया। उर्मिला कल्पनाओं में बहुत कुछ सोचती रहती थी। किन्तु अचानक तीसरे दिन उर्मिला ने अखबार में पढ़ा कि राजा रिपुदमन सबेरे खून में भरे पाये गये। गोली का कनपटी के आर-पार निशान था। मृतक के तकिये के नीचे मिले पत्र का आशय था–यह यात्रा निजी थी। किसी के वचन को पूरा करने जा रहा था। ध्रुव पर भी बचना नहीं था। अब भी नहीं बचूँगा। भगवान् मेरे प्रिय के अर्थ और मेरी आत्मा की रक्षा करें।

●●●